अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

अथर्ववेदीय 'भग-देवता' की प्रेरकोपासना-एक अभ्यास

प्रो. समीरकुमार के. प्रजापति

वैदिकसाहित्य से ही बहुदेवतावाद का प्रचलन रहा है । ऋग्वेद और अथर्ववेद में देवताओं की सङ्ख्या ३३ बताई गई है ।[१] इन देवताओं को अथर्ववेद द्युःस्थान, अन्तरिक्षस्थान और पृथिवीस्थान प्रकार के तीन भागों में विभाजित करता है।[२] ऋग्वेद के तीन भागों का अनुसरण करके यास्क ने[३] निघण्टु के पञ्चमकाण्ड में विभिन्न देवताओं को एक ही देवता के विभिन्न रूपों को पृथिवी, अन्तरिक्ष या मध्य और द्युस्थान इन तीन वर्गों में विभाजित किये हैं । यास्क आगे कहते हैं कि 'प्रत्येक देवता के अपने-अपने क्रियाकलाप के कारण अनेक अभिधान हैं।[४]

वैदिकसाहित्य में देवताओं की उत्पत्ति के बारे में भी इस प्रकार उल्लेख मिलते हैं; "ब्राह्मण प्रजापति या मानवीय ब्रह्मा को कर्ता मानते हैं; यह प्रजापति ऋग्वेद में सङ्केतित काम-बीज का मानवीय प्रतिरूप है"[५] । इन सभी वर्णनों में सर्ग का आरम्भ बिन्दु पुत्रेच्छुक स्रष्टा प्रजापति है । एक उक्ति में कहा है कि देवताओं ने प्रजापति को उत्पन्न किया और प्रजापति ने देवताओं को । बृहदारण्यक ने विकास-क्रम को इस प्रकार रखा है- आरम्भ में यह जगत् जल था, उससे सत्य उत्पन्न हुआ; सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से प्रजापति और प्रजापति से देवता उत्पन्न हुए।[६] ऋग्वेद में उषा को देवताओं की जननी कहा गया है; एक मन्त्र में ब्रह्मणस्पति को और दूसरे में सोम[७] को ।[८] या [९] देवों को जो कि आदित्य नाम से ख्यात हैं, अदिति से उत्पन्न हुए बताए जाते हैं ।

इन विभिन्न वैदिक देवताओं का यथार्थ स्रोत एक ही है, किन्तु उन देवताओं में उस सञ्ज्ञा के कारण विभेद आ गया है । जो कि किसी ऐसे गुणविशेष का बोध कराती है, जिसने शनैः शनैः अपना स्वतन्त्र रूप बना लिया है ।

---

[१] ऋग्वेद, ३/६/९; अथर्ववेद, १०/७/१३
[२] अथर्ववेद १०/९/१२
[३] निरुक्त. ७.१४.९.४३, १०.१-११.५०; १२.१-४६
[४] अनु. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र; मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, २००६, पृ. ३८
[५] कामस्तदग्रे समवर्ततााधि, मनसो, रेतः प्रथमं यदासीत् । ऋ. १०.१२९.४
[६] आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म-ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवान्। बृहदारण्यकोपनिषद् ५.५.१
[७] ऋग्. १.११३.१९
[८] वही. २.२६.३
[९] वही. ९.८७.२

यह बात हम अथर्ववेद के सन्दर्भ में सोचें तो, व्यक्तिक देवताओं में उत्तरकालीन विकास की छवि प्रत्यक्ष है, जब कि कुछ और अभिनव 'भाव' देवता समझे जाने लगे हैं और धर्म 'सर्वदेवता' (अद्वैत) का रूप धारण करके हमारे सम्मुख आता है । अथर्ववेद में व्यक्तिभूत देवताओं के स्तवन-सूक्त अपेक्षया अनेक देवताओं का एक साथ आह्वानयुक्त वर्णन ज्यादा हुआ है जिसका उत्तमोत्तम उदाहरण है अथर्ववेदीय भग-देवता; जो प्रस्तुत शोधपत्र का प्रधान विषय है ।

अथर्ववेदीय भगदेवता - स्वरूप विकास

भग-देवता का उल्लेख वैदिक भग-सूक्त में है । यह सूक्त ऋग्वेद (७.४१), यजुर्वेद (३४) और अथर्ववेद (३.१६) में निरूपित है । भगसूक्त वेद का अत्यन्त प्रसिद्ध और सरल सूक्त है । बारह आदित्यों में 'भग' नामक आदित्य की स्तुति इस सूक्त में है, ऐसा मत अनेक भाष्यकारों का है, फिर भी स्वतन्त्र-रूप से 'भग-भगवान्' के वास्तविक स्वरूप का दर्शन इस सूक्त में होता है । ऋग्वेद में भगवान् शब्द ईश्वर का वाचक नहीं है, परन्तु 'भाग्यशाली' अर्थ का वाचक है।[१०]

विभिन्न कोश, इतिहासादि में भग-देवता या 'भग' शब्द का विवेचन मिलता है ।

'हिन्दूधर्मकोश' में उल्लेख है कि 'यह देव द्वादश आदित्य देवताओं में से एक है । इस शब्द का साधारण अर्थ है 'देने वाला', 'बाँटने वाला' । ऋग्वेद में इस देवता की विधर्ता, विभक्ता, भगवान् इत्यादि उपाधियाँ पायी जाती हैं । वास्तव में यह समृद्धि और ऐश्वर्य का देवता है । वरुण के साथ ही इसका उल्लेख पाया जाता है । उषा भग की बहिन (भगिनी) है, जो स्वयं जागृति और समृद्धि की देवी है।"[११]

यास्कानुसार 'भग' सूर्य का वह रूप है, जो पूर्वाह्न की अध्यक्षता करता है ।[१२] प्राचीन ईरानीभाषा में भग (बघ) 'अहुरमज्द' का एक विशेषण है । स्लावोनिक (यूरोपीय आर्य) भाषा में ईश्वर का एक नाम 'भग' (बोगु) है । इस देवता का व्यक्तित्व स्पष्ट और विकसित नहीं हुआ है । आगे चलकर परमात्मा के ऐश्वर्य अर्थ में इसका विलय हो गया और परमात्मा को 'भगवान्' कहा जाने लगा ।[१३]

वामन शिवराम आप्टे भी अपने कोश में कहते हैं कि 'भगः' (भज्+घ) शब्द सूर्य के बारह रूपों में से एक अर्थात् सूर्य का वाचक है । उसके कुछ और अन्यार्थ इस प्रकार देते हैं :- चन्द्रमा, शिव का रूप, अच्छी किस्मत, भाग्य, सुखद नियति, प्रसन्नता; 'आस्ते भग आसीनस्य' (ऐतरेयब्राह्मण), **भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः** (याज्ञ. स्मृति, १.२८२) सम्पन्नता, समृद्धि, मर्यादा, श्रेष्ठता, प्रसिद्धि, कीर्ति,

---

[१०] प्रधान सम्पादक डॉ. गौतम पटेल, श्रीविष्णुदेव पण्डित, 'वेदना दार्शनिक सूक्तो, संस्कृत-साहित्य-अकादमी, गाँधीनगर, पृ. ५१ ।

[११] सम्पादक डॉ. राजबली पाण्डेय, हिन्दूधर्मकोश, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण२००३, पृ.२६६

[१२] यास्क, निरुक्त, १२.१३

[१३] हिन्दूधर्मकोश, पृ. ४६६

लावण्य, सौन्दर्य, उत्कर्ष, श्रेष्ठता, प्रेम, स्नेह, स्त्रीयोनि (याज्ञ. ३.८८, मनु. ९.२३७), मोक्ष, सामर्थ्य, सर्वशक्तिमत्ता इत्यादि"।[१४] अमरकोशकार भी 'भग' शब्द का प्रयोग सूर्य नाम के लिये प्रयुक्त मानते हैं ।[१५] तथा भग (न.) शब्द के कुछ इस प्रकार अर्थ भी बताते हैं,- '**भगं श्री-काम-माहात्म्य-वीर्य-यत्नार्क-कीर्तिषु।**'[१६] कुछ और भी यहाँ दिये हैं :- ज्ञान, वैराग्य, धर्म, मोक्षादि । शब्दकल्पद्रुम और अमरकोश में 'भग' शब्द का अर्थघटन बताया गया है; ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः वस्तु को 'भग' कहते हैं।[१७]

वैदिक 'भग' का पुराणों में उपबृंहण हुआ है । भागवतकार 'भग' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं;- प्रगल्भता, विनय, सुन्दर स्वभाव, मानसिक शक्ति, ज्ञानेन्द्रिय की शक्ति, कर्मेन्द्रिय की शक्ति, गम्भीरता, अचञ्चलता, श्रद्धा, कीर्ति, पूज्यता (मान) और अहङ्कार साहित्य 'भग' कहा जाता है ।[१८] जबकि श्रीधर स्वामी ने इसका अर्थ 'भोगों का स्थान' किया है ।[१९]

इस प्रकार वैदिक 'भग' देवता का एक व्यापक गुणबोधक व्यक्तित्व प्रकट होता है । विभिन्न कोशकार, पुराणकारादि ने मानो वैदिक देवता (भग-सूक्त) का विभिन्न देवता आधारित जो स्वरूप बताया है, उनका सङ्कलित, सूचित और उपबृंहणात्मक स्वरूप ही दिया है। ऐसे गुणबोधक व्यक्तित्व की उपासना ही फलदायक है, इसलिये प्रथम उपासना का स्वरूप अथर्ववेद के सन्दर्भ में (अर्थ, परिभाषा, पद्धतियों सहित) प्रकट करना समुचित है ।

अथर्ववेदीय उपासना की विभावना

१. अथर्ववेदीय-उपासना

---

[१४] वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, प्रा.लि., दिल्ली, पृ.७२६-७२७

[१५] अमरकोश में भग के सन्दर्भ में सूर्य के कुछ नाम इस प्रकार दिये हैं;- पद्माक्ष, तेजसांराशि, छायानाथ, तमिस्त्रहन्, कर्मसाक्षिन्, जगच्चक्षु, लोकबन्धु, त्रयीतनु, प्रद्योतन, दिनमणि, खद्योत, लोकबान्धव, इन, भग, धामनिधि, अंशुमालिन् अब्जिनीपति (१/३/३०), पृ. २९ ।

[१६] वही. ३.३.३६, पृ. ३९० ।

[१७] ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ शब्दकल्पद्रुम, काण्ड ३, पृ. ४७१ तथा अमरकोश, १.१.१३ ।

[१८] प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।
गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिमानोऽनहङ्कृतिः ॥ भागवतपुराण, १.१६.२८

[१९] भगः भोगास्पदत्वम्.....'भाग.' १.१६.२८ पर की श्रीधरीटीका, भ-२, गीता महेता, श्रीमद्भागवतीय तत्त्वज्ञान, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ.१७ में से साभार उद्धृत ।

अथर्ववेद में उपासना का वाचक 'अथर्व' है । पण्डित सातवलेकरजी इस शब्द की विभावना कुछ इस प्रकार देकर कहते हैं कि 'गतिरहित, थर्वति, गतिकर्मा, **न थर्व इति अथर्वः** ।[२०] इस व्युत्पत्त्यनुसार 'थर्व' शब्द चञ्चलता का वाचक होने के कारण 'अथर्व' अर्थात् निश्चलता, समता, समत्व । इस प्रकार योगसाधना द्वारा प्राप्य चित्तवृत्ति का निरोध ही 'अथर्व' है।[२१] उपासना से ही चित्त-चञ्चलता का नाश होता है ।

चित्त की एकाग्रता के लिए उपासक (ऋषि) देव की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहता है; **परमेष्ठिन्पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ।** (अथर्व., १३.१.१९), चित्तवृत्ति के निरोध के लिए अथर्ववेदकार 'स्तोत्र' को योगसाधनरूप मानता है और इस साधन की उत्पत्ति-महिमा का इस प्रकार गान करता है- 'सर्वव्यापक ईश्वर के पराक्रमों के वर्णन सुखदायी हैं । उसके गुणों का सङ्कीर्तन करने से पराक्रम का ज्ञान प्राप्त होता है । इसलिए उसकी महिमा सब लोग देखें और अनुभूति करें ।[२२] इसलिए तो उपासक उपास्यदेव की रचना-कल्पना करके उसका सङ्कीर्तन करता है । परन्तु 'उपासना' शब्द की सार्थकता तभी सिद्ध होती है कि जब उपास्य और उपासक के बीच ऐक्य, एकरूपता या अद्वैतभाव का स्थापन हो। अथर्ववेद में यह भाव अनेक स्थानों पर निरूपित होता है।[२३]

२. अथर्ववेदीय उपासना-पद्धतियाँ

अथर्ववेद में उपासना की विविध पद्धतियों का निर्देश है । यहाँ आत्मयज्ञ के प्रेरकरूप में कर्मकाण्डीय विधिरूप परिभाषा का उल्लेख हुआ है ;-

अजर्मनज्मि पर्यसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।[२४]

नियमपालन के अर्थ में उपासना-पद्धति का उल्लेख भी मिलता है । नियमपालन में रहकर निष्पाप बनकर (७.८३.३), सत्यपालन करते हुए, प्राणशक्ति से युक्त बनकर (५.१.१), व्रतपूर्वक कर्म करते हुए (५.१.७) उपासक उपासना करता है । उत्तम स्तुतिरूप उपासना के लिए व्रतपालन पर भार रखा है (२.१.१) । व्रत के साथ तप पर भी अथर्ववेद में प्राधान्य दिया है ;-

'धर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः' (४.११.६) ।

---

[२०] सम्पादक-लेखक पं. सातवलेकरजी, ऋग्वेद. सुबोधभाष्य (गुजरातीसानुवाद), भूमिका (भाग-१, मण्डल-१) स्वाध्यायमण्डल, किल्लापारडी, प्रथमावृत्ति, १९५९, पृ.३ ।

[२१] वही. अथर्ववेद, सुबोधभाष्य, ब्रह्मविद्या प्रकरण (सानुवाद गुजराती), ६.१.१, पृ. ५४ ।

[२२] अथर्व. ७.२६.१-२

[२३] समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥ अथर्व., ५.११.१० ।

[२४] अथर्व., ४.१४.६ तथा अथर्व. ४.१४.७-९ ।

समर्पण की भावना से होती हुयी उपासना का उल्लेख समर्पण, यजन, यज्ञ, पूजा (आहुति) द्वारा होता है;- **'कस्मै देवाय हविषा विधेम'** (४.२)- यहाँ समर्पणादि 'हविषा' शब्द के वाचक हैं । ऐसा ही ख्याल ६.८० में भी प्राप्य है ; **ते हविषा विधेम** ।

अथर्ववेद में समूह-प्रार्थना या स्तुति का भी निर्देश हुआ है ;- 'वे निश्चल, शान्त-स्वभाव वाले और मधुरभाषी लोग एक साथ मिलकर एक स्वर से कहते हैं (२.१६.१-५) । प्रार्थना तो मधुर और सामूहिक हो, तो ही उसकी भावभूमि दृढ होती है और निश्चयपूर्वक हो- वह भी उतना ही आवश्यक है (२.२.४) ।

उपासना में कभी-कभी देव का आह्वान किया जाता है (६.८०.२) और जिस गुण की वृद्धि की इच्छा हो उस गुणवाचक शब्द से प्रभु का ध्यान करना चाहिए और अन्य शब्दों को अनेक गुणवाचक विशेषण मानें, वह भी उपासना की एक पद्धति ही मानी जाती है ।[२५] इस सन्दर्भ में देखें तो निरुक्तकार यास्क वैदिक देववाद की चर्चा-विचारणा करके स्पष्ट करते हैं कि वेद में एक ही देवता की, एक ही आत्मा की विविध रूपों में स्तुति की गई है।[२६] वैदिकसंहिताओं में ऋषि, इन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि की मानवाकारों में कल्पना करता है । यह तभी शक्य है, जब निर्गुणब्रह्म अनेक रूपों में व्याप्त होता है, सगुणरूप में आभासित होता है, ऐसे वैदिक देव-स्वरूप मुख्यरूप से सगुण माने जाते हैं।

अथर्ववेद में ऐसे अनेक उपास्य स्वरूपों के दर्शन होते हैं; जो विविध विशेषण, गुण या प्रतीकात्मक रूप से प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे कि बृहस्पति, सोम, रुद्र, भग, आत्मा, इन्द्र अग्न्यादि ।[२७]

अथर्ववेद (७.१४.१) में सविता-सूर्य देवता के पूजा-अर्थ में विविध गुणसूचक विशेषणों का प्रयोग हुआ है । जैसे- 'सूर्य, द्युलोक और पृथ्वीलोक के उत्पादक, ज्ञानी, कर्मकर्ता, सत्य के प्रेरक, रमणीयता के धारक, रक्षक, प्रिय और माननीय है।" उसी प्रकार विद्युत्स्वरूप वर्णन (१.१३.१) प्राण, अपान, द्युलोक, पृथ्वीलोक, सूर्य, वैश्वानर, विश्वम्भर आदि उपास्य देवताओं (२.१६) के लाक्षणिक स्वरूपों की उपासना का वर्णन हुआ है ।

उपर्युक्त बात से एक बात स्पष्ट होती है कि उपासक की उपास्य के पास कुछ अपेक्षाएँ, जिज्ञासा, इच्छाएँ रहती हैं, तभी देवता की गुणानुरागी उपासना उपासक करता है । अथर्ववेद के (४.२) एक सूक्त में ऐसी ही बात निरूपित है; जिसमें एक ही प्रश्न पूछा है कि **"कस्मै देवाय हविषा विधेम'** किस देव की

---

[२५] दे. छान्दोग्योपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६१), भूमिका भाग,पृ. ३०-३१।

[२६] महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते । ४.८.९ ।
यास्क, निरुक्त, संस्कृत-हिन्दी टीकासहित, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, सन्-१९६४

[२७] मूल सम्पादित अथर्ववेद के प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में ऋषि (उपासक), देवता (उपास्य) का निर्देश है, उसको देखते ही उपास्य देवताओं के वैविध्य का ख्याल स्पष्ट हो जाता है ।

पूजा (उपासना) करनी चाहिए ?' इसका उत्तर भी इस सूक्त में ही दिया है- "जो देवता सब कुछ देता है, उसके लिए समर्पण करना वह (व्यक्ति का) कर्तव्य है ।' यहाँ दाता-देवता की शोध के लिए देवताओं के बीस (२०) लक्षण दिये हैं । इन लक्षणों से जिस परमात्मा का बोध होता है, उसकी उपासना करनी चाहिए, अन्य की नहीं।[२८] उन बीस गुणों में से प्रथम दो में मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के साथ परमात्मा का सम्बन्ध दृष्टिगत होता है । अवशिष्ट पाँच में भी एक ही परमात्मा के प्राणीमात्र के राजा और मनुष्य के मोक्षदाता तथा अवशिष्ट गुणों में परमात्मा का 'विश्वधारक' गुण विविध प्रकार से कथित है । उसी प्रकार भग-देवता के भी कई गुण विशेषरूप से एक ही सूक्त में कथित हैं, जो इस प्रकार वर्णित हैं।

३. अथर्ववेदीय भग-देवता की प्रेरकोपासना

अथर्ववेद (३.१६) में एक ही परमात्मा 'भग' के विभिन्न गुणों के बोधक विशेषणों (अग्नि, इन्द्र, मित्र, सोमादि) की उपासना का उल्लेख है । इस वैदिक शैली के अनुसार इस प्रथम मन्त्र में दृष्ट सभी शब्द एक ही परमात्मा (भग) के वाचक हैं । इसलिए कोई भी गुण को प्रधान मानकर प्रभु की उपासना करने से उसकी उपासना तो होती ही है, किन्तु जिस गुण का चिन्तन करने से उस गुण की वृद्धि भी होती है । जिस गुण की मन में झँखना होती है, वही गुण मन में पल्लवित होता है। इस नियमाधीन यह उपासना होती है ।[२९]

एक और बात, जिस गुण की उपासक वृद्धि चाहता है उस गुणवाचक शब्द से प्रभु का ध्यान करना चाहिए और अन्य शब्दों को उससे गुणवाचक विशेषण मानें, यह उपासना की रीति है । इस प्रकार मनन और निदिध्यासन करने से मन का वायुमण्डल ही ऐसा बन जाता है और आवश्यक गुण मन में विकसित होता है । ऐसी बात पं. सातवलेकरजी अपने अथर्ववेदभाष्य में बताते हैं ।[३०]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ध्यान, धारणा, मनन और निदिध्यासन से भी देवता की उपासना होती है। यह बात भग-सूक्त-देवता के सन्दर्भ में भी लागू होगी ।

(१) धारणा

योगदर्शन में कहा है कि चित्त को किसी देश में बाँधना धारणा है ।[३१] जबकि वेदान्तसार में कहा कि 'अन्तरिन्द्रिय का अद्वितीय वस्तु में आसक्ति धारणा' है।[३२] योगदर्शन के टीकाकार ने स्पष्टतः कहा

---

[२८] य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यो ३ स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ अथर्व., ४.२.१ ।

[२९] दे. अग्नि, इन्द्र, वरुणादि देवताओं के गुणों का व्यापक वर्णन- अथर्व. 'ब्रह्मविद्याप्रकरण', पृ. ९२ ।

[३०] अथर्ववेद, सुबोधभाष्य, ब्रह्मविद्याप्रकरण, ३.१६.१ का भाष्य ।

[३१] देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । विभूतिपादः, सूत्र-१ ।
योगदर्शनम्, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई प्रकाशन, हिन्दी टीका सहित, संस्करण १९८९ ।

है कि 'नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक, या नासिकादि कोई एक भाग में चित्त की चञ्चलता को रोककर बाँधना अर्थात् स्थित करना व ओङ्कार का जप करना व उसके अर्थ से ईश्वर का विचार करना 'धारणा' है।[३३]

ब्रह्म या देवता की प्रार्थना के लिए बुद्धि-शुद्धि की आवश्यकता रहती है। वेदान्तसार (अ.१) में कहा है कि **'नितान्तनिर्मलस्वान्तः'** । अथर्व. (३.१६.३) में भी **'इमां धियमुदवा ददन्नः'** कहा है- 'इस बुद्धिको बढ़ाते बढ़ाते हमारी उन्नतावस्था करके रक्षा कर।"

यहाँ प्रार्थना में धनादि की नहीं परन्तु धारणायुक्त बुद्धि की याचना की है । इसके बिना उन्नति असम्भव है । इस बुद्धि-शक्ति का जितना विकास होगा उतनी ही मनुष्य की योग्यता बढ़ती जायेगी। यहाँ प्रथम मन्त्र में जिन-जिन देवों की प्रार्थाना का उल्लेख हुआ है, उन-उन देवता-विशेषों की प्राप्ति के लिए प्रथम धारणारूप साधन की आवश्यकता रहती है । जैसे कि परमेश्वर 'ज्ञानी' है, उस प्रकार की बुद्धि से ज्ञानी बनने की चेष्टा होती है । उतना ही नहीं इस मन्त्र (३) में सज्जन-सङ्ग की भी बात की है । अच्छे सङ्ग से बुद्धि अच्छी और बुरे सङ्ग से बुद्धि बुरी होती है । जो दूसरे मन्त्र में सामर्थ्य, भाग्यवान्, बनने की बात की है, उसके लिए यह बात आवश्यक है । जैसे कि - **प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता' (मन्त्र-२) 'सत्यराधः भग', नृभिः नृवन्तः स्याम' (मन्त्र-३) 'उत इदानीं भगवन्त स्याम, वयं देवानां सुमतौ स्याम' (मन्त्र-४) ।**

२. ध्यान-मनन-निदिध्यासन

इष्टदेवता के रूप-माधुर्य का मानसिक पान 'ध्यान' है । ध्यान भी अष्टाङ्ग-योग का ही एक प्रकार है । यम-नियमादि अष्टाङ्गयोगरूपी साधनों के पालन से उपासना की भावभूमि दृढ़ होती है । मैत्रायणी-उपनिषद् में अष्टाङ्गयोग को ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना है ।[३४]

---

[३२] अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा । खण्ड. ३१
सम्पादकः पं. श्रीरामगोविन्द शुक्लः, वेदान्तसारः, श्रीरामतीर्थप्रणीत' विद्वन्मनोरञ्जनी' समाख्यया व्याख्यया हिन्दीरूपान्तरविस्तृत-भूमिकादिभिश्च समलङ्कृतः; भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९९०

[३३] योगदर्शन, सूत्र.१ की टीका, पृ. ६१ ।

[३४] समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तद् स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ ४.३.१
मैत्रायणी-उपनिषद, उपनिषद्अङ्क, गीताप्रेस गोरखपुर, वर्ष-२३, छट्ठा संस्करण, सं. २०५८ ।

धारणा में प्रत्यय (बुद्धि या चित्त) की एकाग्रता अर्थात् ध्येय पदार्थ मात्र में ही चित्त का मग्न रहना, अन्य विषय में न जाना ध्यान है, ऐसा योगदर्शन में कहा है ।[३५] जबकि वेदान्तसार में कहा है कि 'अद्वितीय वस्तु में चित्तवृत्ति-प्रवाह का नाम ध्यान है ।[३६]

वेदान्तसार में कहा है कि 'वेदान्त के अनुकूलन युक्तियों द्वारा श्रवण किये हुए अद्वितीय ब्रह्म का सतत चिन्तन मनन है ।[३७] इस प्रकर वेदान्तसार में कहा है कि 'विजातीय देहादि प्रत्यय (बुद्धि) सहित अद्वितीय (ब्रह्मस्वरूप) वस्तु के सजातीय ज्ञानप्रवाह को 'निदिध्यासन' कहते हैं ।[३८]

आदिशङ्कराचार्यजी ने विवेकचूडामणि (श्लोक ३६५) में मनन को ब्रह्म-प्राप्ति में उत्कृष्ट साधन माना है। परन्तु मनन के सापेक्ष निदिध्यासन को सर्वोत्कृष्ट माना है । जैसे-

श्रुते: शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥

उपर्युक्त तीन साधनों में सामान्यतः क्रमानुसार अद्वितीय वस्तु या ध्येय (देवता) पदार्थ चित्त की एकाग्रता, ब्रह्म या गुणानुरागी देवता का चिन्तन और अद्वितीय (ब्रह्म/देवता) वस्तु के सजातीय ज्ञान-प्रवाह की बात प्रत्यक्ष होती है अर्थात् मन या बुद्धि द्वारा देवताविशेष या उसके गुणों में चित्त-एकाग्रता, चिन्तन या सजातीय गुण-ज्ञानप्रवाह की बात स्पष्ट होती है ।

प्रस्तुत सूक्तानुसार प्रथम मन्त्र में भग-देवता के विभिन्न स्वरूपों (अग्नि, इन्द्रादि) का सूचन हुआ है । जिस प्रकार से भाग्यवान् या सामर्थ्यवान् बनना है, उस प्रकार से उन-उन देवताविशेषों के गुणों का ध्यान, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए ।

इस सूक्त में भगवान् (भग-देवता) और उनके विभिन्न शुद्ध स्वरूपों का वर्णन हुआ है । प्रथम मन्त्र में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि का आवाहन किया है। इन सभी भग देवतावाचक स्वरूपों का सगुणात्मक कर्म-गुण-विशेष स्वरूप प्रत्यक्ष होता है । जैसे- जितं (विजय प्राप्त करने वाला), उग्रं (साहसिक), पुत्रम् (पुत्र-स्वरूप), विधर्ता (धारण-पालन करने वाला) (मन्त्र-२) । प्रणेतर (प्रकृष्टनेता), सत्यराधः (सत्यधनी); (मन्त्र-३) । भगवान् (भाग्यदाता), भगवन्तः (भाग्यशील), पुरः हता (पुरोगामी, अग्रेसर), (मन्त्र-४); वसुविदम् (धन, लाभ देने वाला) (मन्त्र-६) ।

---

[३५] तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र-२ ।
[३६] तत्राद्वितीयवस्तुनि विच्छिद्यान्तरिन्द्रियवृत्तिप्रवाहो ध्यानम् । वेदान्तसारः, खण्ड. ३१ ।
[३७] मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो वेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम् । वेदान्तसारः, खण्ड ३० ।
[३८] विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताद्वितीयवस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो निदिध्यासनम् । वेदान्तसारः, खण्ड ३० ।

इस प्रकार किसी भी देवता का द्विविध व्यक्तित्व होता है- आन्तरिक और बाह्य । इस प्रकार का व्यक्तित्व-विकास करने के लिए देवता के रूप-माधुर्य का पान अर्थात् ध्यान, मनन या निदिध्यासन करना आवश्यक है। पं. सातवलेकरजी ने अग्न्यादि देव-स्वरूपों के गुणविशेषों का सङ्कलन सरलता के लिए इस प्रकार सुलभ करवाया है ;

(१) अग्नि : तेज, प्रकाश, उष्णता, गतिमान् ।
(२) इन्द्र : शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, नियामक, शासक-राजा ।
(३) मित्र : मित्रदृष्टि से प्रेम करने वाला, सर्वहितकारक ।
(४) वरुण : श्रेष्ठ, निष्पक्षपातपूर्वक सत्य का निरीक्षक, वरिष्ठ ।
(५) अश्विनौ : धन और ऋण-शक्ति से युक्त, वेगवान्, सर्वव्यापक, सर्वत्र उपस्थित ।
(६) भग : भाग्यवान्, ऐश्वर्ययुक्त, धनवान् ।
(७) पूषा : पोषक, पुष्टिकारक ।
(८) ब्रह्मणस्पति : ज्ञान का स्वामी, ज्ञानी ।
(९) सोम : शान्त, ह्लादमयी, कलानिधि, कलावान्, मधुर, प्रसन्नता देने वाला।
(१०) रुद्र : उग्र, प्रचण्ड, भयानक, गर्जना करने वाला, वीर, शूर, वीरभद्र, शत्रु-विध्वंसक वीर, शत्रुओं को रुलाने वाला ।[३९]

उपर्युक्त सङ्कलन और अथर्ववेद के परिशीलन से लगता है कि अथर्ववेदीय समग्र देव-सूक्तों का समाहार इस भगसूक्त में हुआ है। इससे समग्र अथर्ववेदीय उपर्युक्त देवता-सूक्तों का परिशीलन व्यक्त करने की प्रेरणा इस (भग) सूक्त से मिलती है । जो उपादेय बनी रहेगी, ऐसा दृढ मन्तव्य है। जैसे-

अग्नीन्द्र, मित्र-वरुणादि देव आगे शब्दकोशादि में कहा है उस प्रकार सूर्य के बारह स्वरूप हैं। इसलिये उनके कुछ गुणों में समानता प्रतीत होती है । जैसे धन-सम्पत्ति, प्रकाश, पराक्रम, ऐश्वर्य, तेजस्विता, ज्ञान, क्षात्र-तेज, निर्भयदाता आदि । परन्तु कुछ और विशेषताएँ भी हैं, जो आन्तरिक व्यक्तित्व के विकास के लिए उपादेय मानी जायेंगी ।

॥ अग्नि ॥

---

[३९] ब्रह्मविद्याप्रकरण, पृ. ९२

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि' अथर्ववेद(७.९४.४) जो अग्नि के बारे में कहा है, यह उपर्युक्त सारे देवताओं के बारे में भी सामान्य गुण है। ज्ञानरूपी तेज को अग्नि प्रदीप्त करता है।

समग्र अथर्ववेद में धारणा-शक्ति के लिए सद्, कल्याण-बुद्धि पर भार रखा गया है । जैसे-

यज्ञाग्नि के सान्निध्य से हमारी बुद्धि कल्याणयुक्त बनती है (२०.१३.३), हे अग्निदेव ! आप हमें उस मेधा से युक्त करके मेधावी बनाएँ (६.१०८.४) । ऐसा भी कहा गया है कि अग्नि को धारण करने से धारणा-शक्ति बढ़ती है । जैसे -

'हे अग्निदेव ! हम आपके पास नियम-पालन करके शारीरिक-मानसिक संयम-रूप तप करते रहें । उससे श्रुतिओं को सुनकर धारणाशक्ति बढ़े तथा दीर्घायु प्राप्त हो (७.६३.२)। हम क्षात्र-शौर्य एवं ज्ञान-तेज के साथ अग्नि को धारण करते हैं (७.८७.२) । इन्द्र (४.११.७), मित्र-वरुण (१.३.२), अश्विनौ (६.४.३) तथा अन्य देवताओं में भी इस प्रकार धारणा-शक्ति, सद्बुद्धि प्रदान करने का गुण है।

अग्नि तो पथभ्रष्टों का मार्गदर्शक है । अपने प्रभाव से शत्रुओं को सन्मार्ग के प्रति प्रेरता है । (१.७.५) अर्थात् प्रायश्चित्त के लिए प्रेरक है । विषय-विकारों को दूर करके पाप-प्रेरित दुर्बुद्धि से अग्नि दूर रखता है (२.६.५.) । एक स्थान पर तो स्पष्ट लिखा है कि अग्नि तो आसुरीवृत्तिओं को दूर करने की शक्तिओं से सम्पन्न है (२.१८.५) । इस सन्दर्भ में आगे अथर्वकार ने अग्नि को श्रेष्ठ मनयुक्त होने के लिए भी प्रार्थना की है (१९.५५.३-४), जिससे आत्मिक विकास हो सके । इसके सन्दर्भ में भी आगे अथर्व. में कहा है कि आपकी सङ्गति स्वः (आत्मतत्त्व) तथा स्वस्ति को प्राप्त करें (४.१४.५)।

श्रेष्ठ कृतज्ञता के लिए भी अग्नि की प्रार्थना की गई है - 'जो ऋण, पाप और कष्टकारक व्यवहार हुआ है, उनसे मुक्त करके पुण्यलोक, स्वर्गलोक की प्राप्ति हो (६.११७.१२०) । अथर्ववेदकार ने समृद्ध और सौभाग्यशाली राष्ट्र की भावना बताकर श्रेष्ठ बुद्धि और मन के दर्शन करवाये हैं (७.३६.१) । यहाँ **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना उजागर हुई प्रतीत होती है ।

॥ इन्द्र ॥

अपना जीवन एक सङ्ग्राम है । **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** उक्त्यनुसार मानव-शरीर में और बाहर अनेक शत्रु भी हैं", जो मनुष्य को सङ्घर्ष में उतारते हैं । इन्द्र युद्ध का देव है, शत्रुनाशक है, पराक्रमी और उत्साहवर्धक है । इसलिए उसकी उपासना करनी चाहिए । इन्द्र शत्रु-हनन की (१.२०.४), शत्रुओं को वश में करने की, साधकों की कामना पूर्ण करने की, अभयदान देने की (१.२१.१), क्षमता और योग्यता रखता है। वह व्यवसाय-कुशल है (३.१५.१) ।

अथर्ववेद में कहा है कि श्रेष्ठ मन और दाम्पत्य के अग्नि की तरह इन्द्र की भी उपासना प्रेरक है। जैसे 'स्त्री और बच्चे श्रेष्ठ मन वाले बनें (३.४.३) । पत्नी पति के लिए अनुकूल बनें (२.३६.४) ।

इन्द्र प्रजा को अपने-अपने कार्यों में नियोजित करें' ऐसी प्रार्थना भी हुई है (३.४.६., ७.५७.२) । मनुष्य बिना कर्म किये रह नहीं सकता, ऐसी भावना गीता में भी प्रयुक्त हुई है ।

॥ मित्र-वरुण ॥

मित्र और वरुण का संयुक्त वर्णन वेदों में मिलता है। ये दोनों देव सुरक्षा और सत्यमार्गी (४.२९), पापों से मुक्त करने वाले (६.९७.२) देव हैं। वरुण नियन्ता का देव (१.१०), कर्मादि के नियन्ता, ज्ञाता, साक्षी, राजा, सृष्टि-रक्षक हैं (४.१६), धर्माचरण कराने वाले (५.१), प्राणिओं का सञ्चालन करने वाले (५.२२) हैं, विशेषता तो यह भी है कि 'वरुण की प्रार्थना कवि और धैर्यवान् बनने के लिए (५.११.४), वाणी के संयम के लिए (७.८८.२) और कर्मजनित दोषों से मुक्त (७.११७.२) होने के लिए करनी चाहिए' ऐसा अथर्ववेदकार कहते हैं ।

॥ अश्विनौ ॥

यह देवता विशेषतः आयुर्वेद की है (६.१४१.२-३) जैसे कि निरोगी तथा श्रेष्ठ तेज से युक्त होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए (२.२९.७, ७.५५.१) । वह सर्वप्रेरक और पालनकर्त्ता है (५.३.९) । विशेष में वह सरस्वती की अनुकूलता के लिये विद्या देने वाला (२०.१२५.५), वाणी को मधुर बनाने वाला (९.१.१९ ; ६.६९.२) तथा सहनशीलता और श्रेष्ठ कार्य करने का कौशल सिखाने वाला (२०.१४२.५) है ।

॥ पूषा ॥

'पूषा' शब्द ही पोषण का वाचक है । वह पोषक और श्रेष्ठिओं का हितेच्छु (१.११.१) है। विशेष में वह प्राणियों के कर्म का साक्षी (७.१०.१), अप्रमादी, मार्गदर्शन देकर उन्नति के प्रति ले जाता है (७.१०.२) । श्रेष्ठ सन्तान (७.३४.१) और पुण्यलोक में अधिष्ठित करने वाला है ।

॥ ब्रह्मणस्पति ॥

इस देव की उपासना राष्ट्रहित (१.२९.१), सुरक्षा (१९.२४.१), सामर्थ्यवान् और शारीरिक-दृष्टि से सुदृढ, वर्धित (६.१०१.१), हृष्ट-पुष्ट शरीर से युक्त जीवन-सङ्गिनी के साथ रहने के योग्य (१०१.३) बनने के लिए की जाती है । उतना ही नहीं, किसीको प्रिय बनने का गुण उसके पास से प्राप्त होता है (१९.६३.१) ।

॥ सोम ॥

यह देव अश्विनौ की तरह औषधियों का देव, बलवान् (१४.१.२) मधुर और हर्षदाता, आनन्ददायक, उत्साहप्रेरक (२०.१३६.४), वाणी का प्रेरक (२०.१३६.६) तथा पाप और रोग-निवारक (७.४३.१-२) है ।

॥ रुद्र ॥

रुद्र एक भयानक देव है (४.२८.७, ११.२.१०, ११.२.१४, १८.१.४०) । कहा गया है कि 'भय बिन प्रीत नाहिं' । यह देव निम्नप्रवृत्तियों में से बचाता है (४.३), मनुष्यों में प्रतिभा उत्पन्न करता है (४.२८.४); दुष्ट योनियों में से रक्षण करता है (६.३२.२), रोगनाशक (औषधिरूप) (६.५७), अग्नि सम (७.९२.१) तथा विशेष में समानता प्रेरक है (११.२.५) ।

उपर्युक्त धारणा, ध्यानादि साधनों के अलावा अर्चना और स्तुतिरूप साधनों का विनियोग भी भग-देवता की उपासना के सन्दर्भ में अथर्ववेद में से मिलता है । जैसे-

(३) स्तुति और अर्चना

अथर्ववेद में कहा है कि **'अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् (७.१४.१)'** - यहाँ सूर्य की मानसिक-उपासना का वर्णन हुआ है । अर्चना के लिए मूर्ति आवश्यक है, फिर यह मनोकल्पित ही क्यों न हो । अथर्ववेद में प्रतिमा की भी कल्पना की गई है- **वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः (८.९.६)'** - ऊपर जो द्युलोक है, वह वैश्वानर की प्रतिमा है । मानस-पूजा करने वाले उपासक की उपासना अर्चनाप्रधान है ।

सूक्त स्वयं स्तोत्र है । भग-सूक्त में मन्त्र दो से पाँच तो सरल स्तोत्र ही बन जाते हैं । यह समग्र सूक्त प्रातःसूक्त के नाम से भी प्रसिद्ध है, आज भी अनेक गुरुकुलों में प्रातःकाल में गाया जाता है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में ऋषि वसिष्ठ अनेक देवों के साथ भगवान् को याद करके आगे के मन्त्रों में भगवान् का स्मरण करते हुए और भगवान् को अपने पास लाने के लिए उषाओं की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार सात ऋचाओं का यह सूक्त भगवान् की आराधना का सुन्दर दृष्टान्त है ।[४०]

इस सूक्त में ऐसी गुण प्रशंसा इस प्रकार की गई है- यः विधर्ता (विशेष प्रकार के धारक-मन्त्र-२). प्र-नेतः (महानेता), सत्यराधः भग (सत्यसिद्धि देनेवाला मन्त्र-३), वसुविदं भगं (धनयुक्त भगवान्-मन्त्र-६), भद्राः उषासः (कल्याणमयी उषाएँ-मन्त्र-७), यहाँ सभी मन्त्रों में प्रार्थना/अर्चना का ही भाव है । जिनमें उपास्य देव के प्रति याचनाभाव, दीनता आदि का भाव दृष्टिगत होता है । (एक दो उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं) ।

यह प्रातःकाल में अदीनता के वीर भगवान् की प्रार्थना हम करते हैं, जो भगवान् सभी का विशेष प्रकार से धारक है और जिसको अशक्त तथा ससक्त, रङ्क और राजा सभी परमपूज्य मानते हैं 'अपने को भाग्यवान्' बनाने की इच्छा से प्रार्थना करते हैं (मन्त्र-२) यहाँ दीनता आदि का भाव है। तो मन्त्र-३ से ७ में रक्षा, सम्पत्ति-वृद्धि, सन्तान-वृद्धि आदि का याचनाभाव है ।

---

[४०] वेदना दार्शनिक सूक्तो, पृ. ५१

समग्र सूक्त में प्रार्थना या स्तुति के वाचक शब्द भी इस प्रकार मिलते हैं- हवामहे (मन्त्र-१,२) जोहवीमि (मन्त्र-५) आदि ।

देवताओं के गुणविशेषों की मन से कल्पना करना ही मानसपूजा है । समग्र सूक्त में इसी भाव से प्रार्थना की गई है । यहाँ मन्त्र-२ में 'यं मन्यमानः' शब्द उल्लिखित है, जो पूजा के भाव को सूचित करता है ।

निष्कर्ष

१. 'उपासना' भक्ति का प्रमुख माध्यम है । ऐसी भक्तिमूलक उपासना से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध, शान्त और उद्वेगरहित होता है, ईश्वर की भी प्राप्ति (मुक्ति) हो सकती है । समाज और राष्ट्रसेवा की प्रेरणा भी इस प्रकार की उपासना से ही मिलती है ।

२. कोई भी कार्य के लिये ध्येयनिष्ठा आवश्यक है । मनुष्य चित्तैकाग्रता से ध्येयनिष्ठ बनकर किसी भी कार्य की सिद्धि सहज ही प्राप्त कर सकता है । यहाँ चित्तवृत्ति के निरोध के लिए धारणा, ध्यान, मनन, निदिध्यासन आदि साधनरूप माने गये हैं, जो मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिये उपादेय हैं।

३. भग-सूक्त में एक ही देवता के विभिन्न स्वरूपों की सगुणोपासना का निरूपण हुआ है । मनुष्य गुणवाचक देवता के साथ तादात्म्य, भावनात्मक एकता साधकर आन्तरिक गुण, शक्तियों का विकास करके सिद्धियाँ और भौतिक सुख की प्राप्ति कर सकता है। इस भग देवता के वाचक विभिन्न देवताओं की गुणवाचक विशेषताएँ समग्र अथर्ववेद में से सङ्कलित करके प्रस्तुत लेख में दी गई हैं।

४. भग-देवता की व्यापक उपासना से मनुष्य निश्चल बनकर समता या समत्वपूर्वक व्यवहार करें, यह आवश्यक है; जिससे विश्वबन्धुत्व, मानव-कल्याण या विश्वकल्याण की भावना व्यापक हो तथा सामाजिक और भावात्मक ऐक्य उजागर हो ।

५. आज समग्र विश्व तनावग्रस्त है । मधुप्रमेह, उच्चरक्तचाप जैसे रोग आज के भौतिक वातावरण की ही देन हैं । मानव-मन विकृतियों से भरा हुआ है, वाणी में असंयम, तितिक्षा का अभाव दृष्टिगत होता है । अतः उपर्युक्त अघ्न्यादि देवों की उपासना से मानव-मन की विकृतियाँ दूर करके शुद्ध-बुद्धि, शुद्ध सन्तति की उत्तम अपेक्षा इस उपासना से सम्बद्ध हो पाती है । यह पथभ्रष्ट को सन्मार्ग पर लाने में, आसुरी-वृत्तिओं को दूर करने में, सत्सङ्गति, मधुरवाणी, श्रेष्ठ दाम्पत्य-धर्म, वाणी का संयम, तितिक्षा-वृद्धि, अप्रमाद, सबको प्रिय बनने के लिए और

साम्यता, समानता आदि गुणों की वृद्धि के लिए ही उपयुक्त हुई है । बाह्य और आत्मिक-विकास ही श्रेष्ठ मार्ग है । अच्छे गुणों का विकास ही आत्मिक-शक्ति के विकास का दर्शन है।

६. समग्र विश्व परमेश्वर के सामर्थ्य, शक्ति और यश से उत्पन्न हुआ है । जो भी यहाँ है, वह उसका (परमेश्वर का) ही सामर्थ्य है । (**'ईशा वास्यमिदं सर्वम्'**; ईशोपनिषद्-१) ऐसा समझकर सभी पदार्थों में उसका सामर्थ्य देखना चाहिए । तभी अपने में **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** की भावना उजागर हो सकती है ।

७. पाप से बचना मनुष्य का कर्तव्य है । उच्च बनने के लिये यही सच्चा अनुष्ठान है ।

८. इस सूक्त और भग-देवतावाचक सभी देवताओं के गुण-दर्शन में नागरिकधर्म के लक्षण निहित हैं । मानवजीवन सुचारुरूप से चले, वह भी उतना ही आवश्यक है । शान्ति के उपासक आनन्द से रह सकें और उनमें भावात्मक उत्कर्ष बना रहे, उसके लिए यह उपासना आवश्यक है ।

९. भागवतपुराणप्रोक्त भग-शब्द का स्वरूप, मानो भग-देवता के अथर्ववेदीय-स्वरूप में निहित है। जिसके गुणों का उपबृंहण भागवतपुराण, भगवद्गीता और महाभारत में कृष्णचरित्र में हुआ है ।

भगदेवता की अथर्ववेदीय-उपासना का अभिगम लोककल्याण, लोकसङ्ग्रह है । भौतिक और आध्यात्मिक-विकास के लिये है । दिशा और दृष्टि देने के लिये है। भारतीय-समाज, जन-जीवन पर इस उपासना का व्यापक प्रभाव सदैव रहा है और रहेगा । सचमुच ही भग-देवता की उपासना से मनुष्य स्वयं भगवान् बन सकता है। नर में से नारायण बनने के लिए यही उपासना प्रेरक और प्रभावक बन सकती है ।[४१]

प्रो. समीरकुमार के. प्रजापति
एसो. प्रो. (संस्कृत विभाग)
श्री टी.ए. चतवाणी आर्ट्स एण्ड जे.वी.
गोकल ट्रस्ट कामर्स कालेज, राधनपुर,
उत्तर गुजरात ३८५३४०

[४१] प्रस्तुत शोधपत्र में कोष्ठक में दी गई अङ्क सङ्ख्या अथर्ववेद की मन्त्र सङ्ख्या को सूचित करती है ।